International Journal of Advanced Education and Research
ISSN: 2455-5746, Impact Factor: RJIF 5.34
www.alleducationjournal.com
Volume 2; Issue 2; March 2017; Page No. 96-98

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक सरोकार

डॉ. राजेन्द्र सिंह
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जनता कॉलेज, चरखी दादरी, हरियाणा, भारत ।

प्रस्तावना

कवि सर्वाधिक सजग एवं संवेदनशील व्यक्तित्व होता है। समाज में रहकर वह जो कुछ देखता है, अनुभूत करता है उसी की अभिव्यक्ति वह काव्य में करता है। तत्कालीन युग–परिवेश का प्रभाव कवि पर न पड़े ऐसा हो ही नहीं सकता क्योंकि साहित्यकार जिस परिवेश में निवास करता है, जिन परिस्थितियों में जीवनयापन करता है, वही परिवेश उसकी रचना का सरोकार बनता है। साधारण शब्दों में कहा जाये तो "कवि वह बात करता है जिसको सब लोग अनुभव करते हैं, किन्तु जिसको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव शक्ति औरों से बढ़ी–चढ़ी होती है। कवि की पुकार समाज की पुकार होती है। वह समाज के भावों को अपनी वाणी का बल ही नहीं देता वरन् उन्हें नई दिशा भी देता है।"[1] स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में युग–परिवेशगत यथार्थ को महत्त्व दिया गया है। इस प्रकार इन कवियों ने किसी एक 'वाद' में बँधकर काव्य–सृजन नहीं किया अपितु सामाजिक यथार्थ को अपना वर्ण्य–विषय बनाया। इन कवियों की कविताओं में हमें समाज से अलगाव बोध नहीं मिलेगा। पंत के शब्दों में –

"मैं विराट् जीवन का प्रतिनिधि हूँ। मैं वन के मर्म से,
युग के जन्म से चिर परिचित हूँ।"[2]

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने शोषितों के प्रति सहानुभूति प्रकट की तथा उन्हें यथासम्भव सम्बल देने का कार्य भी किया। केवल यही नहीं समकालीन परिवेश में मानव की दयनीय दशा को देखकर कवि का कारुणिक हृदय क्रंदन करने लगता है –

"वर्तमान का भीषण उत्पीड़न है इनको
निर्ममता से कुचल रहा। यदि एक बात तुम
आँखे खोल कर देख लोगे तो सचमुच
करुणा से विगलित उर हो, मर्महित हो तुम
सहम उठोगे, हे फूलों के जग के वासी।"[3]

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने संकीर्ण विचारों, रूढ़ियों तथा खोखले और बेबुनियादी आदर्शों का पुरजोर विरोध किया है। वे इन खोखले आदर्शों को त्याग कर मानसिक शुद्धि पर बल देते हैं। इस वैज्ञानिक युग में मानव ने चाहे कितनी भी भौतिक एवं वैज्ञानिक उन्नति क्यों न कर ली हो परन्तु मानसिक रूप से वह आज भी संकीर्ण है–

"ओ विज्ञान,
देह भले ही वायुयान में उड़े,
मन अभी
ठेले, बैलगाड़ी पर ही
धक्के खाता है!
री! रूढ़िप्रिय जड़ से
तेरी पशुओं की–सी
संशक, त्रस्त चितवन देख
दया आती है।"[4]

स्वतंत्रता पूर्व कवि कल्पना लोक की सैर कर रहे थे लेकिन अब समय आ गया है कि कल्पना लोक को त्याग कर यथार्थ की भावभूमि पर विचरण करने का। स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने ऐसा ही किया। उन्होंने दीन–हीन, साधारण व्यक्ति की वेदना को पहचान कर उसे अपना वर्ण्य–विषय बनाया ताकि उनकी दशा और दिशा में सुधार किया जा सके –

"मैं तुमसे कहा नहीं, न यह मेरा स्वर है,
यह जनता की कातर पुकार है, तड़पन है
मैं तुमसे कहता नहीं, न यह मेरा स्वर है
यह जनता की बेचैनी है, यह धड़कन है।"[5]

भले ही आज हमने परतन्त्रता से मुक्ति प्राप्त कर ली हो लेकिन आज भी समाज में दरिद्रता व्याप्त है। लोगों को अपना जीवन अभिशाप तुल्य लगता है क्योंकि उनके पास खाने के लिए उपयुक्त भोजन, पहनने के लिए वस्त्र नहीं और रहने के लिए केवल खुला आसमान है। 'अर्ध–नग्न' कविता में कवि ने समाज की दयनीय दशा का चित्रण इस प्रकार किया है –

"धोती यही एकमात्र
जिसके ढ़के रहती गात,
पहनती इसे ही दस वर्षों से लगातार,
और कुछ नहीं, इसके भी हुए तार–तार,
मिल गया जब कहीं यदि सौभाग्य से
धोती पहले एक छोर,
इससे लपटे तन,
धोती हूँ फिर और छोर।
× × ×
मैं ही नहीं – मेरी ही तरह और
कोटि–कोटि बहनें हैं, भाई हैं, ठौर–ठौर।
खाते कौर गिन–गिन
काट रहे मुझ से ही अपने जिन्दगी के दिन।"[6]

आज मानव–मन से दया का भाव पलायन कर गया है क्योंकि इसे घोर स्वार्थ ने घेर लिया है। स्वातंत्र्योत्तर कवि ने स्वार्थ को त्याग कर परमार्थ का सन्देश दिया है तथा हिंसा को त्याग कर अहिंसा का पाठ पढ़ाया है तथा धार्मिक उन्माद से दूर रहकर पारस्परिक सौहार्द और भाई–चारे का सन्देश दिया है ताकि विश्व कल्याण का सपना पूरा हो सके –

"एकता सब धर्मों का धर्म,
अहिंसा, हो जीवन का मर्म,
सत्य की सेवा को सत्कर्म
विश्व में हो मंगल कल्याण।"[7]

इन कवियों ने साम्प्रदायिक भेदभाव को त्यागने का सन्देश दिया क्योंकि इन्होंने स्वतंत्रता–संघर्ष एवं विभाजन के दंश को झेला है एवं ये हिन्दू–मुस्लिमों के साम्प्रदायिक दंगों के प्रत्यक्षदर्शी भी हैं। इस संदर्भ में हरिवंशराय बच्चन जी मानवता का पाठ पढ़ाते हुए कहते हैं–

"जिन्दगी और जमाने की है समय–पुकार
बेकार है तुम्हारा होना हिन्दू,
बेकार है तुम्हारा होना मुसलमान,
अगर न रख सके तुम इन्सान का स्वाभिमान,
अगर न रच सके तुम इन्सान के लिए
सुख की जमीन
स्नेह का आसमान है।"[8]

देश विभाजन के समय हुए भयंकर रक्तपात ने चारों तरफ त्राहि–त्राहि मचा दी। इस रक्तपात ने कवि की अन्तश्चेतना को झकझोर डाला। जिसके फलस्वरूप पारस्परिक वैमनस्य और भेदभाव को बढ़ावा मिला। कवि अनायास ही अपनी वेदना की अभिव्यक्ति कर उठता है –

"स्वतन्त्रता प्रभाव क्या यही, यही!
कि रक्त से उषा भिगो रही मही
कि त्राहि–त्राहि शब्द से गगन जगा,
जागी घृणा
ममत्व प्रेम
सो गया।"[9]

इन कवियों की "दृष्टि कई पीढ़ियों की यात्रा की ओर बराबर लगी हुई है, जो इन्हें यात्रा देने के स्थान पर उनका सहयात्री बनना अधिक पसंद करते हैं।"[10] स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने युवाओं को कर्म का संदेश दिया है तथा उन्हें प्रत्येक चुनौती का डट कर मुकाबला करने के लिए प्रेरित भी किया है। साथ ही उन्हें अपनी शक्ति को पहचानने का आह्वान भी किया है। स्वातंत्र्योत्तर कवि भाग्यवाद को दुत्कारते हैं तथा कर्म को महत्त्व देते हुए कहते हैं –

"भाग्य लेटै का सदा लेटा रहा है
जो खड़ा है भाग्य उसका उठ खड़ा है
चल पड़ा जो भाग्य उसका चल पड़ा है।"[11]

महानगरीय सभ्यता और संस्कृति ने व्यक्ति को घोर स्वार्थी बना दिया है। अब वह आत्मकेन्द्रित रहता है। केवल और केवल अपने बारे में ही चिन्तन करता है। उसे अब किसी से कोई लेना–देना नहीं है। ऐसे परिवेश में पारम्परिक संबंधों में दरार आना स्वाभाविक है। मनुष्य की इस वैयक्तिकता की भावना को कवि इस प्रकार अभिव्यक्त करता है –

"ये किसी से दोस्ती या दुश्मनी रखते नहीं
सम्पृक्त अपने से, विरक्त समस्त जगत से
यदि पड़ोसी के यहाँ हो मौत–चोरी
तो इन्हें लगता पता अखबार पढ़कर
हर्ष और विषाद ओ संवेदना के
भिक्षुकों को
ये फटने ही नहीं देते हृदय की देहरी पर।"[12]

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने नारी को शक्ति स्वरूपा माना है। नारी और नर वास्तव में एक सिक्के के दो पहलू हैं। कतिपय लोग नारी को निन्दनीय एवं त्याज्य मानते हैं तो कुछ वन्दनीय भी। दिनकर जी ने नर–नारी को ईश्वर की श्रेष्ठतम् कृति मानकर सृष्टि का मूलाधार कहा है –

"नर रचते कानून, नारियाँ रचती हैं आचार,
जग को गढ़ता पुरुष, प्रकृति करती उसका शृंगार।"[13]

स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने सदैव ही शोषित–पीड़ित मानव की वेदना को अपना वर्ण्य–विषय बनाया और पूंजीपति वर्ग को लताड़ा है। इन्होंने ऊँच और नीच वर्ग के भेदभाव का यथातथ्यांकन इस प्रकार किया है–

"कहीं दूध के बिना तरसती मानव की संतान,
कहीं खीर के मटके खाली करते जाते श्वान।
कहीं वसन रेशम के सस्ते महंगी कहीं लंगोटी,
कोई घी से नहा रहा, मिलती न किसी को रोटी।"[14]

परतंत्रता से मुक्त हुए भारत को पर्याप्त समय हो गया लेकिन आज भी हमारे समाज में गरीबी और भूखमरी से लोग मर रहे हैं। कारण, मुट्ठी भर लोग, जिनके हाथों में शासन व्यवस्था की डोर है, वे देश–समाज का रक्त चूस रहे हैं। कवि नागार्जुन ने जन–मन की वेदना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है –

"गिनती के चावल रोते हैं, महंगाई की मार से
जीरा हंसा भभाकर, भड़का नकली तेल बकाया में
आलू डोल रहे हैं, भिंडी सहमी खड़ी कतार में
देशी गेहूँ पड़े दिखाई, सपनों के कोठार में।"[15]

कवि नागार्जुन ने 'प्रेत का बयान' नामक कविता में स्वाधीन भारत के अध्यापक की दयनीय दशा का चित्रण किया है और बताया है कि देश में भूखमरी आम बात हो गई है। इसमें इन्होंने भूखे व्यक्ति की दशा का यथार्थ चित्रण किया है। ऐसे परिवेश में जहाँ लोग अकाल और भूख के कारण मर रहे हों, उस देश की दशा और दिशा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। देखिए –

"हमें, हमारे घर वालों को,
पड़ोसियों को दो छुटकारा,
शीघ्र मुक्ति दो हमें
जहाँ न भरता पेट,
देश वह कैसा भी हो महानरक है।"[16]

इसी कड़ी में केदारनाथ अग्रवाल का काव्य–सरोवर भी जीवन–समर का कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत करता है। कवि को तत्कालीन समाज की दशा विचलित करती है। लोगों की दयनीय दशा को देखकर कवि का हृदय करूणा विगलित हो उठता है इसलिए कहा जा सकता हैं कि "केदार धरती के कवि हैं। खेत, खलिहान, कारखाने और कचहरी के कवि हैं। इन सबके दुख–दर्द, संघर्ष और हर्ष के कवि हैं। वे शोषित और पीड़ित मनुष्य के पक्षधर हैं। वे मानव के कवि हैं। मनुष्य बनना और बनाना ही उनके जीवन की तथा कवि–कर्म की सबसे बड़ी साध है तथा साधना भी।"[17] केदारनाथ जी सामाजिक सत्य एवं दरिद्रता का यथार्थ चित्रण करते हैं तथा कहते हैं कि वर्षों बीत जाने पर भी उनकी दशा और दिशा में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता –

"किन्तु, झोंपड़ी वही खड़ी है,
नई ईंट तक नहीं लगी है

बड़ी गरीबी भरी पड़ी है,
वहीं धुँआ है, वहीं क्षुधा है
वही कर्ज है, वही सूद है
वही जमींदारों का छल है,
मानव से मानव शोषित है।"[18]

स्वातंत्र्योत्तर युग के प्रत्येक कवि ने व्यष्टिगत और समाष्टिगत अनुभूति को अपना वर्ण्य–विषय बनाया। कवि नरेन्द्र शर्मा जी ने कहा है कि 'मनोभूमि के कृषक के नाते, कवि–कर्म को मैं अपना लोकोपयोगी कर्त्तव्य कार्य समझता हूँ और मानता हूँ कि मैं इस प्रकार समाज के मनोमय वैश्वानर की पूजा में नैवेद्य समर्पित करता हूँ।'[19] कवि ने अनुभूत किया है कि आज परिवर्तित परिवेश में मानवता एवं रीतियाँ–नीतियाँ पलायन कर गई हैं। 'चातक मनुज' नामक कविता में नरेन्द्र शर्मा जी कहते हैं –

"मनु का पुत्र युगों से
खोई मानवता का प्यासा,
धर्म–अर्थ की रीति–नीति से
पूरी हुई न आशा।"[20]

स्वातंत्र्योत्तर कवियों का नारी के प्रति दृष्टिकोण सहानुभूतिमय रहा है। इन्होंने कहा कि नारी दासी नहीं है, वह कुशल गृहिणी है, आदिशक्तिस्वरुपा है। वह बहुरूपा व्यक्तित्व सम्पन्न है, भोग की वस्तु नहीं अपितु वरणीय और वन्दनीय है। नर–नारीगत भेदभाव को इन कवियों ने सिरे से नकार कर नारी की महिमा का गुणगान किया है –

"क्यों नर की सहचरी न नारी,
भोग्या एक पहर की?
× × ×
क्यों नर नंदी रहे और क्यों
घर की बछिया नारी?"[21]

त्रिलोचन जी ने अपने काव्य में जीवन–स्पन्दनगत यथार्थ को अभिव्यक्त किया है। इन्होंने जीवन–यथार्थ को अपना वर्ण्य–विषय बनाया है। त्रिलोचन जी ने जीवन–सत्य का उद्‌घाटन करते हुए कहा है –

"जीवन देखा, धूल और मिट्टी से आया
था, रक्त के कणों में यह संबंध समाया
था, कुछ ऐसा कि नदी की भी कल कल छल छल
मैं समाज में सुनता था, जिसका था खाना
बिना झिझक बेलाग मुझे उसका था गाना।"[22]

श्रीकान्त वर्मा की कविताएँ भी जीवन–संघर्षों की देन है। इनकी कविताओं में तत्कालीन परिवेश की अभिव्यक्ति हुई है कि आज इस भौतिकवादी युग में व्यक्ति निजी उन्नति के लिए पारस्परिक संबंधों को किस प्रकार खण्डित कर रहा है। आगे चलकर यही एकाकीपन जीवन में तनाव और कुण्ठा को निमन्त्रण देता है। जो एक गम्भीर एवं चिन्तनीय विषय है और सामाजिक ताने–बाने पर खतरा भी –

"हर एक दूसरे से परिचित
होने की कोशिश में कुछ और
अपरिचित होकर
गुजर रहे हैं एक दूसरे के
समीप से लगातार।"[23]

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कविता में सामाजिक सत्यों और तथ्यों का सजीवांकन हुआ है। इस युग में युवा पीढ़ी का असंतोष एवं एकाकीपन एक विचारणीय बिन्दु रहा है। इसी प्रकार टूटते सामाजिक–पारिवारिक संबंध एवं बढ़ते भौतिकवाद ने अनेक यक्ष प्रश्न हमारे सामने खड़े कर दिए हैं। साम्प्रदायिकता की भावना ने एक तरफ जहाँ हमारे पारस्परिक सौहार्द में जहर घोला है वहीं दूसरी तरफ सामाजिक ताने–बाने को कमजोर कर विकास के मार्ग को भी अवरुद्ध किया है। भौतिक प्रतिस्पर्धा की भावना ने मनुष्य को यंत्रवत् बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप पारम्परिक संबंधों में विच्छेदन की स्थिति उत्पन्न हो गई है। केवल यही नहीं स्वार्थ की भावना एवं शोषण की वृत्ति ने अमीर–गरीब की खाई को और अधिक बढ़ा दिया, जिससे सामाजिक–आर्थिक असन्तुलन बढ़ गया। उधर युवा को असंतोष और बेरोजगारी ने चारों तरफ से घेर लिया जिसका सीधा प्रभाव सामाजिक ताने–बाने पर दिखाई दिया। अतः ऐसे परिवेश स्वातंत्र्योत्तर कवियों ने लोगों की आशा–निराशा, आकांक्षा और बेरोजगारी, आक्रोश के भावों को अपनी कविता का वर्ण्य–विषय बनाकर जन–मन तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास किया ताकि लोग इसका पठन–पाठन करके जीवन–स्तर को उन्नत बना सकें तथा समाज में भाई–चारे की भावना में अभिवृद्धि हो सके।

सन्दर्भ सूत्र

1. गुलाबराय, काव्य के रूप, पृ० 5, संस्० 1958
2. पंत, रजतशिखर, पृ० 56, संस्० 2008
3. वही, वही पृ० 60, वही
4. वही, कला और बूढ़ा चाँद, पृ० 118, सं० 1959
5. सोहनलाल द्विवेदी, मुक्तिगन्ध, पृ० 47, संस्० 1972
6. वही, चेतना, पृ० 5, संस्० 1954
7. वही, पूजागीत, पृ० 89, संस्० 1959
8. बच्चन, बुद्ध और नाचघर, पृ० 89, संस्० 1958
9. बच्चन, धार के इधर उधर, पृ० 73–74, संस्० 1960
10. रामदरश मिश्र, हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम, पृ० 47–48, संस्० 1972
11. बच्चन, चार खेमे चौसठ खूँटे, पृ० 134, संस्० 1962
12. वही, त्रिभंगिमा, पृ० 187, संस्० 1962
13. दिनकर, नये सुभाषित, पृ० 8, संस्० 1957
14. वही, नीलकुसुम, पृ० 93, संस्० 1956
15. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, पृ० 63, संस्० 1983
16. वही, युगधारा, पृ० 93, संस्० 1982
17. केदारनाथ अग्रवाल : कहे केदार खरी–खरी–भूमिका, संस्० 1983
18. वही, वही, पृ० 47, संस्० 1983
19. नरेन्द्र शर्मा, प्यासा निर्झर–भूमिका, संस्० 1964
20. वही, अग्नि शस्य, पृ० 65, संस्० 1952
21. वही, बहुत रात गये, पृ० 43, संस्० 1967
22. त्रिलोचन, उस जनपद का कवि हूँ, पृ० 85, संस्० 1982
23. श्रीकांत वर्मा, माया दर्पण, पृ० 76, संस्० 1967